जैन एकता : आधार और विस्तार

❑ आचार्यश्री विजय नित्यानन्दसूरी

जैन एकता की हर कोई बात करता है किंतु उसका प्रतिफल? प्रतिफल आज दिन तक शून्य में विलीन है। धूल में हर कोई लट्ठ मार रहा है किंतु एकता का सूत्र नजर नहीं आ रहा है। हाथी के दांत दिखाने के और तथा खाने के और होते है ! संगठन हेतु कभी किसी के हाथ बढ़े भी तो वे हाथ बढ़ते-बढ़ते ही जड़वत् हो गये। निराशा में आशा की एक किरण ला रहे हैं – आचार्य श्री विजय नित्यानंदसूरी जी म. ! आप द्वारा आलेखित एकता के पाँच सूत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

– सम्पादक

एकता कैसी हो ?

एक विचारक ने लिखा है - "संगठन का मतलब है, एक साथ मिल-जुलकर परस्पर एक दूसरे का सहयोग करना।"

प्रकृति संगठन चाहती है, संगठन के आधार पर ही संसार चलता है। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण देखना हो तो कहीं दूर मत जाइए, अपने शरीर पर ही एक नजर डालिए। शरीर में विभिन्न अवयव हैं, अंग-उपांग हैं – हाथ, पैर, आँख, कान, नाक जीभ आदि। इस शरीर के भीतर पेट है, हृदय है, यकृत है, गुर्दा है, इन सबके व्यवस्थित कार्य संचालन से शरीर चल रहा है। देखिए ये सब अलग-अलग हैं, सबका काम भी अलग-अलग है, स्थान भी अलग हैं। किन्तु फिर भी सब एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। हाथ-पैर परिश्रम करते हैं, मुंह भोजन ग्रहण करता है, पेट उस भोजन को पचाता है, रक्त आदि रस बनते हैं। हृदय प्रति क्षण धड़कता रहकर उस रक्त को हजारों नसों में फेंकता है। अशुद्ध रक्त को स्वयं ग्रहण करता है, शुद्ध रक्त को नसों में प्रवाहित करता है। गुर्दा रक्त को शुद्ध/रिफाइन करता है। इस प्रकार प्रत्येक अवयव की अपनी-अपनी जिम्मेदारी है, सब स्वतंत्र हैं किन्तु फिर भी एक दूसरे से जुड़े हैं। यदि पुरुष का एक हाथ या एक पैर बेकार हो जाता है तो दूसरा हाथ पैर अकेला ही पूरी जिम्मेदारी उठा लेता है और देखने का सब काम एक ही आँख पूरा कर लेती है।

दो गुर्दे हैं, जिन्हें किडनी कहते हैं। यदि एक किडनी खराब हो जाती है तो दूसरी किडनी पूरे शरीर में रक्त शुद्धि का काम अकेली करती जाती है। हृदय का एक बाल्व बन्द पड़ जाता है या एक फेंफड़ा काम नहीं करता है, तो इसका दूसरा अंग अपने आप सब काम पूरा कर लेता है। शरीर के सभी अंग बिना किसी शिकवे-शिकायत के स्वयं ही पूरी जिम्मेदारी से शरीर का संचालन करते रहते हैं और मनुष्य को पूरे जीवन काल तक जीवित/सक्रिय रखते हैं। सब अवयव एक-दूसरे से अलग होते हुए भी एक दूसरे के लिए काम करते हैं, एक दूसरे के क्षतिग्रस्त या नष्ट होने पर उसका पूरा काम अकेला ही करता जाता है – सामाजिक चेतना का, सामूहिक सहयोग भावना का कितना बड़ा और आश्चर्यकारी उदाहरण आपके सामने है। प्रकृति ने आपको सामाजिकता का, संगठन का, पारस्परिक सहयोग और मेल-जोल का कितना सुन्दर पाठ दिया है, परन्तु आप हैं कि इस पर ध्यान ही नहीं दे रहे हैं।

मैं पूछता हूँ, आप जो भाषणों में, चर्चाओं में संगठन एकता और सहयोग की बड़ी-बड़ी लच्छेदार बातें करते हैं। कभी सोचा है, आपने, कि संगठन कैसे चलता है, एकता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे निभती है और किस प्रकार हम सब एक-दूसरे के लिए उपयोगी और सहयोगी बन सकते हैं? संगठन की बात करने वाले जरा पांच मिनट शांत चित्त से अपने ही शरीर पर चिन्तन करें। प्रकृति द्वारा पढ़ाया यह पाठ याद करें कि एकता या संगठन कैसे चलता है। कैसे निभाया जाता है।

हमारे आचार्यों ने हजारों वर्ष पहले ही हमें एक अमर सूत्र दिया था – **परस्परोपग्रहो जीवानाम्**। सभी जीव परस्पर एक दूसरे के उपकारी व सहयोगी होते हैं। यह जीव का स्वभाव है, प्रकृति का नियम है और इसी आधार पर मानव समाज क्या, समूचा प्राणिजगत् जीवित है, गतिशील है / प्रगतिशील है और उन्नतिशील है।

अपने ऊपर आकाश मंडल में देखिए जरा। इस नील गगन में असंख्य-असंख्य तारे अनादि काल से विचरण कर रहे हैं। सब तारों का अपना-अपना प्रभाव है, अपनी-अपनी चमक है और अपना मंडल है, दायरा है। कभी कोई किसी दूसरे की सीमा पर आक्रमण नहीं करता। किसी पर प्रहार नहीं करता। किसी से कोई टकराता नहीं। सब तारे मिलकर संसार को प्रकाशित कर रहे हैं। क्या हम इस संसार में रहकर अपना अलग अस्तित्व रखकर भी तारों की तरह विचरण नहीं कर सकते? क्या हमारी एकता, हमारा संगठन इतना प्रभावशाली नहीं हो सकता कि जैन शासन के सभी तारे मिलकर संसार को प्रकाश देते रहें?

मुझे आश्चर्य होता है और खेद भी होता है कि आज जैन एकता की बातें हो रही हैं और वह भी हवाई। पचासों वर्षों से जैन एकता और जैन समाज का संगठन होने की चर्चायें चल रही हैं। हमारे आचार्य श्रीमद् विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. ने जैन एकता के लिए पचास वर्ष पहले एक जोरदार प्रयास प्रारंभ किया था। उनकी आत्मा का कण-कण, शरीर का रोम-रोम पुकारकर कह रहा था.... "जैनों! एक हो जाओ ! एकता के बिना तुम अपने धर्म व संस्कृति को सुरक्षित नहीं रख सकोगे।" उन्होंने सभी संप्रदायों के आचार्यों व नेताओं से भी संपर्क किया था। जैन एकता के प्रयासों में काफी प्रगति हुई थी परन्तु कहते हैं ऐन मौके पर मक्खी छींक गई। कुछ सांप्रदायिक तत्त्वों ने उन प्रयासों को सफल नहीं होने दिया और जैन समाज पहले से भी ज्यादा फूट ग्रस्त हो गया।

जो जैन समाज अनेकान्तवादी हैं, स्याद्वादी हैं, जिसने समन्वय का सिद्धान्त संसार को सिखाया है, परस्पर सहयोग एवं उपकार का अमर सिद्धान्त जिसने अपने दर्शन का आधार माना है – वही जैन समाज एकता और संगठन के लिए वर्षों से बातें कर रहा है, परन्तु आज भी वही ढ़ाक के तीन पात !

मुझे दुख होता है यह देखकर कि आज पहले से भी ज्यादा फूट-द्वेष-झगड़े और एक दूसरे पर दोषारोपण करने की प्रवृत्ति बढ़ी है, बढ़ रही है और यही प्रवृत्ति हमारे समाज की शान्ति को छिन्न-भिन्न कर रही है। फूट का घुन समाज रूपी वृक्ष की जड़ें खोखली करता जा रहा है। बल्कि कहूं, कर चुका है।

स्वार्थ व अहंकार त्यागे बिना एकता कैसी ?

आप जानते हैं एकता बातों से नहीं होती, केवल भाषणबाजी से एकता नहीं चलती। एकता के लिए एक बात छोड़नी पड़ती है और एक बात स्वीकारनी पड़ती है। एकता का आधार है – सरलता, प्रेम और विश्वास। एकता का शत्रु है – अहंकार और स्वार्थ।

एक ऐतिहासिक उदाहरण

भगवान् महावीर के समय में गणधर इन्द्रभूति १४ हजार साधुओं में सबसे ज्येष्ठ थे। प्रथम गणधर थे। अगणित लब्धि-ऋद्धि-सिद्धि के धारक थे। देव-देवेन्द्र भी उनके चरणों की रज मस्तक पर चढ़ाकर आनन्दित होते थे। स्वयं को भाग्यशाली समझते थे। वे गौतम स्वामी,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बार जब श्रावस्ती नगरी में पधारे हैं, उनके शिष्य नगर में भिक्षा के लिए जाते हैं और वहाँ देखते हैं कि उनके जैसे ही श्रमण जिनके वस्त्र रंग-बिरंगे हैं, नगर में भिक्षा के लिए घूम रहे हैं। गौतम-शिष्यों को आश्चर्य होता है, उनसे मिलते हैं, पूछते हैं - आप कौन हैं ?

वे श्रमण कहते हैं – हम भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य केशीकुमार श्रमण के शिष्य हैं। उनको आश्चर्य होता है, जब हम सब निर्ग्रन्थ हैं, एक ही मोक्ष मार्ग के पथिक हैं तो फिर यों अलग-अलग क्यों हैं? क्या बात है जो हमें एक-दूसरे से दूर किये हुए हैं।

महान् ज्ञानी गौतम स्वामी शिष्यों को बताते हैं – भगवान् पार्श्वनाथ का धर्म चातुर्याम धर्म है। भगवान् महावीर का धर्म पंचयाम धर्म है। बस, ऐसे ही कुछ छोटे-छोटे मतभेद हैं जिनके कारण हम अलग-अलग हैं किन्तु अब हमें परस्पर मिलकर इन मतभेदों को सुलझाना है और दोनों ही श्रमण परम्पराओं को मिलकर एक धारा बन जाना है। छोटी-छोटी धारा, धारा होती है किन्तु जब सब धाराएं मिल जाती हैं तब प्रवाह बन जाता है, नदी बन जाती है और नदी समुद्र बन जाती है। अलग-अलग बिखरे तिनके कचरा कहलाते हैं। किन्तु सब तिनके मिलकर झाडू बन जाता है तो वही तिनके कचरा बुहारने और सफाई करने का साधन हो जाता है।

लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े अलग-अलग स्थानों पर पड़े जल रहे हैं, उनसे धुंआं निकल रहा है। वातावरण दूषित हो रहा है, परन्तु जब सब जलती लकडियाँ एकत्र हो जाती हैं तो वही महाज्वाला बन जाती है। उस महाज्वाला का सामना करने की शक्ति किसी में नहीं है। तो गौतम स्वामी अपने शिष्यों से कहते हैं – हमें केशीकुमार श्रमण से मिलना चाहिए। प्रश्न खड़ा होता है, पहले कौन मिले? एकता और संगठन तो चाहिए, किंतु पहल कौन करें ? जब बडप्पन का प्रश्न आ जाता है तो पांव वहीं चिपक जाते हैं; किन्तु गौतम गणधर सरलता के देवता थे। विनय और प्रेम के महाप्रवाह थे। यद्यपि गौतम स्वामी भगवान् महावीर के गणधर थे। पूरे संघ में सबसे ज्येष्ठ और घोर तपस्वी, महाज्ञानी थे। जबकि केशीकुमार श्रमण भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के एक अंतिम प्रतिनिधि आचार्य मात्र थे। पद की दृष्टि से गौतम ज्येष्ठ थे, ज्ञान की दृष्टि से भी, साधना की दृष्टि से भी वे उत्कृष्ट थे। परन्तु जहाँ प्रेम और सरलता होती है, वहाँ बड़े-छोटे का भेद उभरता ही नहीं। बड़े-छोटे का विचार भी संकीर्ण और छोटे मन की उपज है। गौतम कहते हैं- वे भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्य हैं। हमारी निर्ग्रन्थ कुल परम्परा में बड़े हैं। हम ही उनके पास जायेंगे। उनसे मिलेंगे और परस्पर बातचीत करके सभी मतभेदों को दूर कर एक हो जायेंगे।

एकता के लिए यह है – त्याग ! एकता व संगठन हमेशा त्याग चाहता है / बलिदान चाहता है। जब तक आप अपने अहंकारों का त्याग नहीं करेंगे। अपने छोटे-छोटे स्वार्थ नहीं छोड़ेंगे तब तक एकता का स्वप्न पूरा नहीं होगा। गौतम और केशी स्वामी का इतना प्रेरक और उच्च उदाहरण हमें मार्गदर्शन करता है, प्रेरणा देता है कि यदि एकता और संगठन चाहते हैं तो अपना अहंकार छोड़ो, स्वार्थ छोड़ो; शिष्यों का मोह छोड़ो। पदों की लालसा छोड़ो और दूध-चीनी की तरह मिल जाओ। दूध-पानी की तरह नहीं, जो दूध का मोल गिरा दे, मिलो तो ऐसे मिलो ज्यों दूध में मिश्री। प्रेम से मिलो ! सद्भाव बढ़ाओ।

आप सब जैन हैं, भाई-भाई हैं, स्वधर्मी हैं। आपके शास्त्रों में स्वधर्मी-प्रेम, स्वधर्मी-सहायता की बड़ी-बड़ी महिमा बताई हैं। आपने भी सुनी है, स्वधर्मी बंधु की सेवा करना महान् पुण्य का कार्य है। परन्तु जान-बूझकर भी फिर आप भाई-भाई क्यों लड़ते हैं ? क्यों एक दूसरे की निन्दा करते हैं? क्यों एक दूसरे के चरित्र पर कीचड़ उछालते हैं? सोचिए, यदि कोई आप पर कीचड़ उछालता है तो आपके ऊपर उसके छीटे लगें या न लगें किन्तु हाथ तो गंदे होंगे ही। कीचड़ उछालने वाला सदा घाटे में रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निन्दा में तेरह पाप हैं -

आज जैन समाज राग, द्वेष, कलह, फूट-फजीता में बदनाम हो चुका है। अपनी हजारों वर्षों की प्रतिष्ठा खो रहा है। तीर्थों के झगड़े, स्थानकों व उपाश्रयों के झगड़े, संस्थाओं के झगड़े और इससे भी आगे साधु-साधु में परस्पर प्रतिद्वन्द्विता। एक दूसरे की यश-कीर्ति सुनकर जलना, एक दूसरे की सफलता और सम्मान देखकर छाती पीटना और उनकी निन्दा करना। उनके चरित्र पर अवांछनीय लांछन लगाना। कितना नीचे गिर गया है हमारा समाज। अपने उदार सिद्धान्तों से पतित हो गया है। मुझे बहुत पीड़ा होती है, यह देखकर। एक तो यह छोटा-सा समाज है। करोड़ों के सामने लाखों की संख्या में ही है और वह भी इतने टुकड़ों में बंटा है। बंटा है तो भी कोई बात नहीं, परन्तु एक-दूसरे को नीचा दिखाने में, एक-दूसरे की टांग खींचने में, एक-दूसरे की प्रतिष्ठा को क्षति पहुंचाने में ही अपनी शक्ति, समय और धन की बर्बादी कर रहा है। और बात केवल धन की बर्बादी की नहीं है, अपनी आत्मा को कलुषित, पतित कर रहा है।

परम श्रद्धेय आचार्यश्री विजय वल्लभ सूरीश्वर जी म. फरमाते थे – एक दूसरे की निन्दा, आलोचना और छींटाकशी करना महापाप है। निन्दक, अठारह पापों में तेरह पापों का भागी होता है। यानी दूसरों की निन्दा, चुगली, आलोचना, दोषारोपण करने वाला तेरह पापों का सेवन करता है। पाप के अठारह भेद में से तेरह भेद निन्दा के साथ जुड़े हैं।* इसलिए यह महापाप है। अस्तु,

आज संगठन की, एकता की बहुत जरूरत है। आज की दुनिया में जो संगठित है वही शक्ति सम्पन्न है। शुक्ल यजुर्वेद में एक मंत्र है –

अनाधृष्टाः सीदतः सहौजसः।

जो संगठित हैं, परस्पर प्रेम सूत्र में बंधे हैं, उन्हें कोई भी महाबली परास्त नहीं कर सकता। उन्हें कोई भी शक्ति भयभीत नहीं कर सकती।

आज जैन संस्कृति, जैनधर्म और श्रमणों व श्रावकों पर चारों तरफ से आक्रमण हो रहे हैं। उन्हें स्थान-स्थान पर प्रताड़ित, भयभीत करने का प्रयास हो रहा है। जैन मन्दिरों को, जैन मूर्तियों को विध्वंस किया जा रहा है। उन पर आक्रमण किये जा रहे हैं। जैन साधु-साध्वियों पर कई बार कई स्थानों पर बर्बर आक्रमण हुए हैं और इतना बड़ा साधन-संपन्न, बुद्धि-संपन्न जैन समाज एक हीनसत्व पुरुष की तरह यह सब देखता है। बिल्ली जब एक कबूतर पर झपटती है तो दूसरे कबूतर अपनी गर्दन नीची कर लेते हैं। सोचते हैं, यह उस पर झपट रही है, हम पर नहीं। हम सुरक्षित हैं। क्या आज ऐसी स्थिति नहीं है? सम्पूर्ण जैन संस्कृति पर आक्रमण हो रहे हैं। यदि अपनी संस्कृति और अपनी महान् दार्शनिक धरोहर की रक्षा करनी है तो जैन समाज को एकता के सूत्र में बंधना ही पड़ेगा। संगठित हुए बिना वह अपनी अस्मिता की रक्षा नहीं कर सकेगा। अपना अस्तित्व भी सुरक्षित नहीं रख पायेगा।

एकता के पाँच सूत्र-

मैं विस्तार में नहीं जाकर एकता की पृष्ठभूमि के रूप में एक पांच सूत्री योजना आपके सामने रख रहा हूँ। आप सोचें, आपको मैं नहीं कहता अपनी संप्रदाय छोड़ दो, आम्नाय छोड़ दो, अपनी मान्यताएं त्याग दो। अपनी गुरु परम्परा को भुलाने की बात भी नहीं करता हूँ। आप जहाँ हैं, जिस परम्परा में हैं, वहाँ रहें परन्तु शान से रहें,

★ निंदा करनेवाला – १. मृषावाद बोलता है। २. क्रोध, ३. मान, ४. माया, ५. लोभ, ६. राग, ७. द्वेष, ८. कलह, ९. अभ्याख्यान, १०. पैशुन्य, ११. पर परिवाद, १२. माया मृषा और १३. मिथ्यादर्शन शल्य रूप इन तेरह पापों का भागी होता है – निन्दक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वीरता के साथ रहें, कायर बनकर नहीं। शेर बनकर रहिए। कुत्तों की तरह पीछे से टांग मत पकड़िए।

निंदा करना कायरता है। झगड़ना दुर्बलता है। लांछन लगाना नीचता है, बस, इनसे बचे रहें। खरबूजे की तरह ऊपर से भले ही एक-एक फांक अलग-अलग दीखें परन्तु भीतर सब एक हैं। पूरा खरबूजा एक है। बस, आप भले ही ऊपर से अपनी-अपनी परम्पराओं से जुड़े रहें, परन्तु भीतर से जैनत्व के साथ, महावीर के नाम पर एक बने रहें।

एकता के लिए सबसे पहले निम्न पहलुओं पर हमें पहल करनी होगी-

(१) एक-दूसरे की निंदा, आलोचना, आक्षेप, चरित्र हनन जैसे घृणित व नीच कार्यों पर तुरंत प्रतिबंध लगे।

(२) तीर्थों, मन्दिरों, धर्म-स्थानों व शिक्षा संस्थाओं आदि के झगड़े बन्द किये जाय। इनके विवाद निपटाने के लिए साधु वर्ग या त्यागी वर्ग को बीच में न डालें और न ही जैन संस्था का कोई भी विवाद न्यायालय में जाये। दोनों समाज के प्रतिनिधि मिलकर परस्पर विचार विनिमय से 'कुछ लें, कुछ दें' की नीति के आधार पर उन विवादों का निपटारा किया जाय। अहंकार और स्वार्थ की जगह धर्म की प्रतिष्ठा को महत्व दिया जाय। महावीर का नाम आगे रखें।

(३) सभी जैन श्रमण, त्यागीवर्ग परस्पर एक-दूसरी परम्परा के श्रमणों से प्रेम व सद्भाव पूर्वक व्यवहार करें। आदर व सम्मान दें।

(४) महावीर जयन्ती, विश्व मैत्री दिवस जैसे सर्व सामान्य पर्व दिवसों को समूचा जैन समाज एक साथ मिलकर एक मंच पर मनाये। सभी परम्परा के श्रमण एक मंच पर विराजमान होकर भगवान् महावीर की अहिंसा, विश्व शांति का उपदेश सुनायें।

(५) संवत्सरी पर्व, दशलक्षण पर्व, क्षमा दिवस जैसे सांस्कृतिक व धार्मिक पर्व एक ही तिथि को सर्वत्र मनाये जाएं।

इस प्रकार हम एक-दूसरे के निकट आ सकते हैं। **मैं विलय का पक्षपाती नहीं हूँ, केवल समन्वय चाहता हूँ। विलय हो नहीं सकता। जो संभव नहीं उसके विषय में सोचना भी व्यर्थ है। समन्वय हो सकता है। हमारा दर्शन अनेकान्तवादी है। इसलिए हम परस्पर एक-दूसरे के सहयोगी बनकर एक-दूसरे की उन्नति और प्रगति में सहायक बनें। एक-दूसरे को देखकर प्रसन्न हों। इस पृष्ठभूमि पर ही हमें सोचना चाहिए।**

गुणीजनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा करके यह मन सुख पावे।।

यदि जैन एकता के लिए यह प्राथमिक आधारभूमि बन सके तो इस शताब्दी की, इस सहस्राब्दी की यह उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना सिद्ध होगी। जो भाग्यशाली इसका श्रेय लेगा वह इतिहास का स्मरणीय पृष्ठ बन जायेगा। ●●●

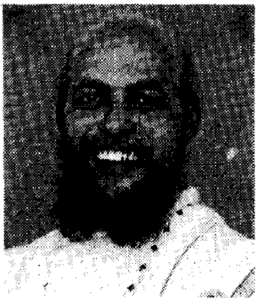

आचार्य श्रीमद् विजय नित्यानन्द सूरिजी महाराज जैन संघ के प्रभावशाली संत है। आपका जन्म वि. सं. २०१५ में दिल्ली में हुआ और आपने मात्र ६ वर्ष की अल्पायु में दीक्षा ग्रहण की। आप अध्ययनशील, गुण-ग्राही एवं जिज्ञासु वृत्ति के धनी हैं। आप श्री के समन्वयपरक व्यक्तित्व ने समाज में एकता, संगठन एवं शान्तिपूर्ण सौहार्द स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आपने शिक्षा व मानव सेवा के क्षेत्र में अनेक कार्य किये हैं तथा शिक्षालयों, चिकित्सालयों व सहायता केन्द्रों की भी स्थापना की। 'नवपद पूजे, शिवपद पावे' ग्रन्थ आपकी श्रेष्ठ धार्मिक कृति है। — संपादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org